दो टूक

ज्यां द्रेज और रीतिका खेड़ा

परिदृश्य

edit@amarujala.com

नकदी नहीं चाहिए

राशन की दुकान से खाद्यान्न ही चाहते हैं लोग

माननीय प्रधानमंत्री जी,

रिसर्च स्कॉलर, छात्र और स्वयंसेवकों के हमारे एक समूह ने हाल ही में देश के ग्रामीण क्षेत्रों में तीन हफ्ते सार्वजनिक वितरण प्रणाली के सर्वेक्षण में बिताए। इस अनुभव के आलोक में हम लोग राष्ट्रीय आहार-सुरक्षा अधिनियम (नेशनल फुड सिक्यूरिटी ऐक्ट) के बारे में कुछ बातें आपसे साझा करना चाहते हैं।

अपने सर्वेक्षण में हम लोगों ने नौ राज्यों (आंध्र प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़, हिमाचल प्रदेश, झारखंड, उड़ीसा, राजस्थान, तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश) में औचक रीति से चयनित 100 से ज्यादा गांवों का सर्वेक्षण किया। हमने स्थानीय उचित मूल्य की सरकारी राशन-दुकानों का निरीक्षण किया और एक हजार से ज्यादा बीपीएल श्रेणी के परिवारों से रू-ब-रू हुए।

सर्वेक्षण से पता चलता है कि देश भर में सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) में पुरजोर सुधार हुआ है। सर्वेक्षण में शामिल सभी राज्यों में, अपवाद स्वरूप बिहार को छोड़कर, पीडीएस के सुधार के लिए हाल के बरसों में बड़ी पहलकदमियां हुई हैं और ये प्रयास रंग ला रहे हैं। सर्वेक्षण में जिन घरों का जायजा लिया गया, उन सबको पीडीएस के अंतर्गत अपने हक का खाद्यान्न (सस्ते दाम पर अनुदानित 35 किलोग्राम प्रति माह) का पूरा का पूरा नहीं, तो भी बहुलांश में हासिल हो रहा था।

हमने पाया कि पीडीएस लाखों ग्रामीण परिवारों के लिए जीवन रेखा बन गया है। अगर पीडीएस सुचारु ढंग से काम कर रहा है, तो एक तरह से गारंटी हो जाती है कि घर में हमेशा भोजन उपलब्ध रहेगा। जो लोग दो जून की रोटी का जुगाड़ भी नहीं कर पा रहे, उनके लिए यह बहुत बड़े राहत की बात है। सदियों से इस देश पर बदनुमा दाग की तरह मौजूद भुखमरी के खात्मे की दिशा में भी यह एक बड़ा कदम है।

लेकिन बुरी खबर यह है कि बीपीएल की सूची बहुत दोषपूर्ण है। कई राज्यों में पूरा का पूरा समुदाय इस सूची से गायब है, और लगभग हर जगह बीपीएल सूची में बड़े पैमाने पर गरीबों के नाम दर्ज नहीं हैं। इससे भोजन की सुरक्षा के एक साधन के रूप में पीडीएस की प्रभावकारिता बहुत घट गई है।

कैश ट्रांसफर के तहत दी जाने वाली रकम का या तो दुरुपयोग हो सकता है या फिजूल खर्च हो जाएगा।

इसलिए अर्थशास्त्रियों के विद्वतवर्ग द्वारा हाल ही में की गई पीडीएस को 'लगभग सार्विक' (नियर यूनिवर्सल पीडीएस) करने की मांग का हम लोग समर्थन करते हैं, जिसमें कहा गया है कि हर परिवार को अनुदानित मूल्य पर खाद्यान्न हासिल करने का हक है और उसे इस दायरे से तभी हटाया जाए, जब वह सुपरिभाषित मानकों पर इसके योग्य जान पड़े।

अर्थशास्त्रियों के उपरोक्त समूह का मानना है कि पीडीएस के विकल्प के रूप में 'कैश ट्रांसफर' अपनाने के पक्ष में मजबूत 'सैद्धांतिक दलीलें' मौजूद हैं। ज्यादातर लोगों ने इसका विरोध किया। जिन इलाकों में पीडीएस का संचालन सुचारु ढंग से हो रहा था, वहां, और निर्धनतम परिवारों के बीच कैश-ट्रांसफर के विरुद्ध जो कारण उन लोगों ने गिनाए, वे विचारणीय और औचित्यपूर्ण हैं।

अधिकांश मामलों में कैश-ट्रांसफर के विरोध का कारण एक न एक तरीके से खाद्य सुरक्षा से जुड़ा हुआ था। मिसाल के लिए, सर्वेक्षण में शामिल ज्यादातर प्रतिभागी इस बात से चिंतित थे कि कैश ट्रांसफर के तहत दी जाने वाली रकम का या तो दुरुपयोग होगा या फिजूल खर्च हो जाएगा। जिन जगहों से बाजार दूर हैं, वहां लोगों की चिंता थी कि वे अनाज खरीदने कहां जाएंगे और अगर स्थानीय स्तर पर खाद्य पदार्थ के दामों में अचानक बढ़ोतरी हुई, तो उनका काम कैसे चलेगा। जहां बाजार नजदीक हैं, वहां भी लोगों के मन में आशंका थी कि अगर पीडीएस बंद हो गया, तो व्यापारी खाद्यान्न की कीमत बढ़ा देंगे। ठीक इसी तरह से लोगों ने यह भी कहा कि स्थानीय बैंक या तो बहुत दूर हैं या उनमें भीड़ ज्यादा है। साक्षात्कार के दौरान कई लोगों ने बताया कि मनरेगा की मजदूरी के भुगतान के दौरान बैंकों में उनके अनुभव बहुत कड़वे रहे हैं। इसके विपरीत, लोग स्थानीय स्तर पर मौजूद उचित मूल्य की सरकारी राशन दुकान से अपनी जान-पहचान और उससे जुड़ी हुई सुविधा को बहुत तवज्जो देते हैं। जिन जगहों पर पीडीएस का संचालन ठीक ढंग से नहीं हो रहा, (मसलन बिहार और उत्तर प्रदेश के कुछ इलाकों में) सिर्फ उन्हीं जगहों पर हमने पाया कि पीडीएस के विकल्प के रूप में लोग कैश ट्रांसफर में रुचि दिखा रहे हैं।

इन बातों के आलोक में हम आपसे निवेदन करते हैं कि राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम में खाद्यान्न के हक की जगह कैश ट्रांसफर के विकल्प को अपनाने की किसी हड़बड़ी के खिलाफ मजबूत से मजबूत प्रावधान सुनिश्चित किए जाएं। हां, हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि पीडीएस में सुधार की बहुत गुंजाइश है।

सादर

(यह पत्र सामाजिक कार्यकर्ता ज्यां द्रेज और आईआईटी, दिल्ली की रीतिका खेड़ा तथा उनके साथियों ने प्रधानमंत्री को भेजा है)

हमारे विशेष सर्वे के निष्कर्ष

देश के नौ राज्यों में मई-जून, 2011 में छात्र-स्वयंसेवकों द्वारा सार्वजनिक वितरण प्रणाली से संबंधित एक विस्तृत सर्वेक्षण किया गया। इसके दो अहम निष्कर्ष हैं -

1. देशभर में सार्वजनिक वितरण प्रणाली में व्यापक सुधार दिख रहा है (यहां तक कि उड़ीसा और उत्तर प्रदेश में भी) बिहार अपवाद है।
2. जहां भी सार्वजनिक वितरण प्रणाली अच्छे से काम कर रही है, वहां लोग कैश ट्रांसफर के बजाय खाद्यान्न को ज्यादा तवज्जो दे रहे हैं।

राज्य	पीडीएस खाद्यान्न की औसत मासिक खरीद (किग्रा/परिवार)	पूर्ण कोटा के अनुपात में औसत खरीद (फीसदी)	प्रतिभागियों का अनुपात (फीसदी)	
			खाद्यान्न को तवज्जो देने वाले	कैश को तवज्जो देने वाले
आंध्र प्रदेश	14.9	99	91	6
उड़ीसा	29.2	97	88	6
छत्तीसगढ़	33.3	95	90	2
हिमाचल प्रदेश	37.1	93	81	9
तमिलनाडु	17.9	92	71	11
राजस्थान	26.0	87	60	15
उत्तर प्रदेश	30.7	77	42	34
झारखंड	24.9	71	66	22
बिहार	11.2	45	21	54
सभी राज्य	24.0	84	67	18

पूर्ण कोटा का मतलब सरकारी मानक पर आधारित नमूना परिवार की पीडीएस खाद्यान्न पात्रता से है। सर्वोच्च न्यायालय के हाल के आदेश पर अतिरिक्त खाद्यान्न कोटा की आपूर्ति हिमाचल प्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान और उत्तर प्रदेश के लिए हुई। अन्य राज्यों ने इस अतिरिक्त कोटे को नहीं उठाया। उड़ीसा के मामले में ये आंकड़े केवल चावल के संबंध में हैं। (चावल पात्रता के बारे में स्पष्टता नहीं है)

***नोटः** यह सर्वेक्षण प्रत्येक नमूना राज्य के दो जिलों में 106 औचक चयनित गांवों में किया गया। इसमें गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले 1,227 परिवारों को शामिल किया गया, जिसमें अंत्योदय परिवारों और संबंधित श्रेणियां शामिल हैं। आंकड़े अंतरिम हैं।*

कश्मीर के सियासी मोहरे

बीच बहस में

प्रो. भीम सिंह

अब्दुल्ला परिवार की तीसरी पीढ़ी का राज आज चरम सीमा पर पहुंच गया है, जिसकी बुनियाद मुसलिम कांफ्रेंस के नाम से 1931 में रखी गयी थी और जिसका उद्देश्य डोगरा खानदानी राज खत्म करके जम्मू-कश्मीर को इसलामी राज्य बनाना था। उसके नेता शेख मोहम्मद अब्दुल्ला के समर्थन के लिए 1946 में भारत के मनोनीत प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू को रावलपिंडी के रास्ते श्रीनगर पहुंचने से पहले ही गिरफ्तार कर लिया गया। नेशनल कांफ्रेंस का वह आंदोलन डोगरा राज के विरुद्ध था। वहीं से कश्मीर को जम्मू से अलग करने की शुरुआत हुई।

विगत अक्तूबर में उमर अब्दुल्ला ने केंद्र को चेतावनी दे दी कि जम्मू-कश्मीर का भारत के साथ कभी विलय हुआ ही नहीं और यह राज्य भारत का आंतरिक हिस्सा है ही नहीं। ताज्जुब की बात यह है कि गृह मंत्री पी चिदंबरम ने उमर अब्दुल्ला की इस टिप्पणी पर समर्थन की मुहर लगा दी और पूरा देश देखता रह गया। पिछले ही साल उमर अब्दुल्ला ने जम्मू-कश्मीर से हजारों की तादाद में पाकिस्तान गए नौजवानों को वापस बुलाने का ऐलान किया था, जो प्रशिक्षण के लिए गए थे।

पिछले महीने पाकिस्तान गए उन नौजवानों को वापस लाने का मसौदा तैयार कर लिया। उसी दौरान गृह मंत्रालय ने 24 नौजवानों के पहले बैच को प्रवेश-परमिट देकर कश्मीर वापस बुलाने की अनुमति दे दी। जम्मू-कश्मीर सरकार ने ऐसे 1,300 के नामों की सिफारिश की है। उमर अब्दुल्ला अब शेख अब्दुल्ला के नक्शे कदम पर नहीं, जमात-ए-इसलामी के नक्शे कदम पर चलकर नेशनल कांफ्रेंस की डिक्सन प्लान के एजेंडे को अमली जामा पहनाना चाहता है। एक तरफ तो कश्मीर से भगाए गए कश्मीरी पंडितों को कश्मीर वापस बुलाया जा रहा है, दूसरी तरफ अल-कायदा के खेमों से प्रशिक्षित आतंकवादियों को नायक बनाकर उनके हाथ में कश्मीर आने का परमिट दिया जा रहा है। उनके पुनर्वास के लिए प्रधानमंत्री के कोष से 1,200 करोड़ रुपये निर्धारित किए गए हैं। उमर अब्दुल्ला उस 'जम्मू छोड़ो अभियान' को सफल बनाना चाहते हैं, जो उनके दादा भी नहीं कर सके।

देश की जनता यह जानना चाहती है कि एक लाख के करीब जो हिंदू शरणार्थी पाकिस्तान से जम्मू-कश्मीर आए थे और जिन्हें वोट देने का तक अधिकार नहीं है, जम्मू-कश्मीर में उन्हें पिछले 60 वर्षों से कोई सामाजिक अथवा राजनीतिक अधिकार नहीं दिए गए हैं, उन्हें अब कौन से अधिकार दिए जाएंगे। दस लाख के लगभग जम्मू-कश्मीर में वे शरणार्थी हैं, जो पाक-अधिकृत कश्मीर से अपना सब कुछ लुटाकर जान बचाकर भागे थे। उनके पुनर्वास के लिए किसी भी सरकार ने आज तक कोई भी कदम नहीं उठाया। क्या सिर्फ इसलिए कि वे हिंदू हैं और और कश्मीरी भाषी नहीं हैं? और जो लोग अपनी मरजी से कानून की धज्जियां उड़ाकर राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरे में डालकर जम्मू-कश्मीर से इसलिए गए थे कि उन्हें हथियारों और कट्टरवाद का प्रशिक्षण लेना था, उन्हें वापस बुलाने के लिए पाकिस्तान में भारत के राजदूत स्वयं मुजफ्फराबाद जाएंगे।

प्रश्न उठता है कि कश्मीर के वे मुसलिम युवा, जिन्होंने बचपन से भारत के तिरंगे को अपने कंधों पर उठाकर देश की सीमाओं और धर्मनिरपेक्ष नीति की रक्षा की है, उनके पुनर्वास का क्या होगा। इनमें हजारों इंजीनियर, डॉक्टर, कृषि विशेषज्ञ आदि शामिल हैं। ये लोग वर्षों से सड़कों पर धरना लगाए बैठे हैं, परंतु उनके पुनर्वास के लिए सरकार के पास धन नहीं है। फिर उन लगभग 12,000 नौजवानों का क्या होगा, जिन्होंने कब का आत्मसमर्पण कर रखा है?

देशहित में यही होगा कि उग्रवादियों की इस तथाकथित वापसी और पुनर्वास की नीति को फौरन खारिज कर उन युवकों के पुनर्वास की योजना बनाई जाए, जो राज्य की जेलों में राजनीतिक बंदी हैं अथवा वे पढ़े-लिखे नौजवान, जो बेरोजगारी का शिकार हैं, या वे मासूम, जो आज भी न्याय व अधिकार की तलाश कर रहे हैं। यह तभी संभव है, जब जम्मू-कश्मीर की जन-विरोधी नेशनल कांफ्रेंस जैसी सरकार को दफा करके जनप्रिय सरकार बनाने के लिए स्वतंत्र-निष्पक्ष चुनाव कराए जाएं। अमन, राष्ट्रीय एकता और लोगों तक हक और इनसाफ पहुंचाने का यही एक रास्ता है।

खेल और भी खतरनाक

कश्मीरी अमेरिकन काउंसिल (केएसी) के मुखिया सैयद गुलाम नबी फई की अमेरिका में गिरफ्तारी पाकिस्तान सरकार और आईएसआई की भारत-विरोधी मुहिम का एक और सुबूत है। एफबीआई ने वहां की अदालत में जो हलफनामा दाखिल किया है, उसके मुताबिक, इस एनजीओ की आड़ में अमेरिकी सांसदों के बीच कश्मीर के बारे में पाक हितों को बढ़ावा देने का सुनियोजित काम पिछले दो दशकों से किया जा रहा था। यह वाकई बहुत आश्चर्यजनक है कि जिस पाकिस्तान का काम अमेरिकी अनुदान के बगैर नहीं चल सकता, वह कश्मीर मुद्दे पर अंतरराष्ट्रीय जनमत अपनी ओर मोड़ने के लिए अमेरिकी सांसदों को पैसे देता था। इस मुद्दे पर पिछले दो दशक में पाकिस्तान ने करीब 40 लाख डॉलर खर्च किए और डेन बर्टन जैसे सांसदों को कश्मीर पर पाक रुख का करीब-करीब समर्थक बना लिया। विश्व जनमत का ध्यान कश्मीर की ओर खींचने के लिए फई अमेरिका में सेमिनार आयोजित करवाते रहे, जिसमें पाकिस्तान और अमेरिका के विशेषज्ञों के अलावा कश्मीर के अलगाववादियों और कुछ वरिष्ठ भारतीय पत्रकारों की भागीदारी होती थी, जिनमें कश्मीर में सरकार द्वारा नियुक्त वार्ताकारों में से एक का नाम आया है। प्रकटतः फई ने अपनी छवि उदार बौद्धिक वाली बना रखी थी, जबकि अपने अभियान में वह आईएसआई से दिशा-निर्देश लेते रहते थे। इसलामाबाद से सीधा रिश्ता साबित होने के बाद ही फई की गिरफ्तारी हुई है, क्योंकि अमेरिकी कानून के मुताबिक, कोई विदेशी सरकार उसके राजनेताओं को फंड मुहैया नहीं करा सकती।

पाकिस्तान भारत से वार्ता का दिखावा करता है और कश्मीर के लिए करोड़ों झोंकने में भी नहीं झिझकता।

अलबत्ता इस पूरे प्रसंग में खुद अमेरिका की भूमिका कोई कम संदिग्ध नहीं है। जो अमेरिका हजारों किलोमीटर दूर छिपे लादेन को ढूंढकर मार गिरा सकता है, वह अपने मुल्क में पिछले दो दशक से चल रहे एक एनजीओ के नापाक खेल से अनजान होगा, यह कौन मानेगा? फई ने बराक ओबामा और अल गोर के चुनाव प्रचार की भी फंडिंग की थी, और अमेरिका इस पूरे मामले में आंख मूंदे रहा होगा, यह संभव नहीं है। बल्कि उसने तो फई को कई मंचों से सम्मानित भी किया। यह मुमकिन नहीं है कि फई को पुरस्कृत करने का फैसला उसने उनकी गतिविधियों को जाने बगैर लिया होगा। नायक फई अमेरिका के लिए अचानक खलनायक कैसे बन गया? चूंकि इस बीच अमेरिका-पाकिस्तान के बीच रिश्ते काफी खराब हो चुके हैं, शायद इसीलिए वाशिंगटन ने फई की कलई खोलने के लिए जान-बूझकर यह समय चुना हो। हमारे लिए अच्छी बात यही है कि इस प्रसंग से कश्मीर पर पाकिस्तान की मंशा का दुनिया भर को पता चला है।

edit@amarujala.com

प्राण ही देव है

अंतर्यात्रा

***अतिथि** देवो भवः* यानी अतिथि को देवता मानकर उसका सत्कार करना हमारी संस्कृति रही है। पुराणों, *बाइबिल* और अन्य धर्मग्रंथों में अनेक प्रसंग मिलते हैं कि किस तरह घर आए व्यक्ति को स्वयं भूखा रहकर भी भोजन दिया जाता है। चीनी यात्री ह्वेन सांग ने लिखा है, 'मैं भारत यात्रा के दौरान जिस परिवार में पहुंचता था और पानी मांगता था, वह पानी की जगह दूध या छाछ से भरा गिलास पेश करता था।'

छांदोग्योपनिषद् का प्रसंग है। अभिप्रतापी नामक सद्गृहस्थ शौनिक एवं कथासेन के साथ बैठे भोजन कर रहे थे। अचानक एक भिक्षुक वहां आ पहुंचा तथा विनयपूर्वक बोला, 'मैं भी भूखा हूं। मुझे भी भोजन दें।' अभिप्रतापी ने कहा, 'हम खुद द्वारा अर्जित धन से बनाए गए भोजन का उपयोग कर रहे हैं। इसमें दूसरे का अधिकार कैसा?' भिक्षुक चुपचाप द्वार के कोने पर बैठ गया। जब भोजन के बाद अभिप्रतापी बाहर निकले, तो उस भिक्षुक ने कहा, 'भोजन देवता व चार ऋषियों की तृप्ति के लिए पकाया जाता है। तुम उन्हें भोजन कराए बिना कैसे तृप्त हो सकते हो?' भिक्षुक ने आगे कहा, 'प्राण ही देव है। जल, पवन, अग्नि और वायु उसके चार ऋषि हैं। ये चारों एक ही महाप्राण का पोषण करते हैं। समस्त प्राणधारी उसी के घटक हैं। मेरे प्राण भी आपके प्राण की तरह हैं। मैंने प्राणों की रक्षा के लिए कुछ भोजन मांगा। क्या उस समय शास्त्र वचन भूल गए कि सभी प्राणी भगवान के स्वरूप हैं।' भिक्षुक के ये शब्द सुनकर अभिप्रतापी की आंखों में पश्चाताप के आंसू आ गए।

शिवकुमार गोयल

आज का बयान

संसद में मजबूत लोकपाल विधेयक पेश किया जाना चाहिए और प्रधानमंत्री को भी इसके दायरे में होना चाहिए, क्योंकि प्रधानमंत्री भ्रष्टाचार निरोधक कानून के दायरे में आते हैं।

- प्रकाश करात

बाकी ने कहा

मुख्यधारा में आने के बाद माओवादी नेताओं की दुविधा कई बार सामने आई है। अब तो वे अपने बच्चों को भी उन निजी स्कूलों में भेजने लगे हैं, जिनका विरोध वे आंदोलन से पहले किया करते थे।

- काठमांडू पोस्ट, नेपाल

खुली खिड़की

टेस्ट क्रिकेट

भारत और इंग्लैंड के बीच टेस्ट सीरीज का पहला मैच शुरू होते ही 'क्रिकेट का मक्का' कहा जाने वाला लॉर्ड्स एक और इतिहास का गवाह बन गया है। करीब 28,000 दर्शकों की क्षमता वाला यह स्टेडियम हालांकि 1814 में ही बनकर तैयार हो गया था, पर यहां अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट की शुरुआत टेस्ट के साथ 1884 में हुई, जब 21 जुलाई को इंग्लैंड और ऑस्ट्रेलिया आपस में भिड़े। इन्हीं दोनों देशों के बीच 26 अगस्त, 1972 को यहां वन-डे भी खेला गया, जो इस मैदान का पहला एकदिवसीय मैच था।

टेस्ट क्रिकेट की यह यात्रा करीब 135 वर्षों की है, जिसमें उसने कई उतार-चढ़ाव देखे हैं। बहस टेस्ट क्रिकेट के औचित्य को लेकर भी होती रही है। बहरहाल पहला आधिकारिक टेस्ट मैच 15 मार्च, 1877 को इंग्लैंड और ऑस्ट्रेलिया के बीच मेलबर्न क्रिकेट मैदान में खेला गया था, जिसमें इंग्लैंड को 45 रनों से हार का सामना करना पड़ा था। हालांकि इसी मैदान पर खेले गए अगले टेस्ट मैच में इंग्लैंड ने ऑस्ट्रेलिया को चार विकेट से हराकर न सिर्फ हिसाब बराबर कर लिया, बल्कि सीरीज भी ड्रॉ करवा ली। हालांकि 1844 में कनाडा और अमेरिका के बीच दो दिवसीय क्रिकेट मैच खेला जा चुका था, पर उसे टेस्ट मैच का आधिकारिक दरजा नहीं मिला है। यह एक दिलचस्प संयोग है कि टेस्ट क्रिकेट के 100 वर्ष पूरे होने पर 1977 में मेलबर्न के क्रिकेट मैदान में ही जब ऑस्ट्रेलिया और इंग्लैंड आपस में भिड़े, तो उसमें एक बार फिर जीत ऑस्ट्रेलिया के हाथ लगी, और वह भी 45 रनों से।

अभी नौ देश क्रिकेट का यह पांच दिनी संस्करण (टेस्ट) खेलते हैं, जिसमें भारत सर्वोच्च स्थान पर है, जबकि बांग्लादेश सबसे निचले पायदान पर। जिंबाब्वे भी टेस्ट क्रिकेट खेलने वाले देशों में शुमार था, पर लगातार खराब प्रदर्शन की वजह से आईसीसी ने उससे यह दरजा छीन लिया है।

पत्र

अर्श से फर्श पर

मीडिया मुगल रुपर्ट मर्डोक आज जिस स्थिति से गुजर रहे हैं, वह स्पष्ट करता है कि लोकतंत्र में कोई शक्ति बड़ी नहीं। बेशक *न्यूज ऑफ द वर्ल्ड* ने बहुतेरे स्कैंडल के खुलासे किए हैं, वे सच हो सकते हैं, पर उनका इस तरह फर्श पर आ जाना ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता ही बताता है।

कणिका, सादतपुर, दिल्ली

नया नजरिया

वंदना शिवा ने अपने लेख 'अन्न स्वराज' में जिस तरह किसान, भूमि और तकनीक के संबंधों को लेकर नया नजरिया प्रस्तुत किया, वह कई मायनों में अद्भुत था। न सिर्फ वर्तमान की दशा और दिशा की तसवीर उस लेख में खींची गई, बल्कि किसानों की समस्या के निदान के लिए लेकर एक दूरदर्शी योजना की झलक भी दिखी।

संदीप भट्ट, उत्तरकाशी, उत्तराखंड

इबारत

धैर्य निराशा की अंतिम अवस्था है। निरुपाय होने पर ही हम इसकी शरण में जाते हैं।

- प्रेमचंद

खुली किताब बंद आदमी

तमाशा

जब नेता यह कहता है कि 'मैं तो खुली किताब हूं' तो मैं समझ ही नहीं पाता हूं कि वह किस तरह का आदमी है। वह अपनी बुराई कर रहा है या विनम्रता जाहिर कर रहा है, क्योंकि मुझे यही नहीं मालूम कि किताब खुली और बंद कैसी होती है, और यह भी कि किताब का खुला होना अच्छा होता है या बंद होना। जब आपको खुली और बंद किताब का फर्क ही नहीं मालूम, तो आप क्या खाक तय करेंगे कि आपके नेता कितने बुरे हैं?

बंद या खुली किताब की तरह आदमी की फितरत कैसे तय की जा सकती है, क्योंकि किताब या तो अच्छी होती है या फिर बुरी। वह कभी खुली या बंद होती है, यह साहित्य में तो अभी तक पता नहीं चला है। राजनीति के लोग खुली किताब के बहाने साहित्य की चौखट तक आ जाते हैं, यह अच्छा संकेत है।

जिंदगी में एक भी किताब न पढ़ने वाला नेता अचानक खुली किताब कैसे हो जाता है, यह समझना मुश्किल है।

आश्चर्य मुझे इस बात पर भी होता है कि लोग नेता की बात को उदाहरण की तरह पेश करते हैं कि वे तो खुली किताब हैं। मैंने लोगों से इसका मतलब पूछना चाहा, तो उन्होंने पल्ला झटक लिया कि खुली किताब का मतलब पता होता, तो राजनीति या साहित्य में नहीं पाए जाते, यहां झख क्यों मारते? जो खुली किताब होने का दावा करते थे, उनसे पूछा, तो कहने लगे, यही कहने का रिवाज है। हमने तो कहने से पहले नहीं पूछा और तुम अब पूछ रहे हो...! अच्छा-सा ही मतलब होता होगा इस बात का। वरना वह कहा ही क्यों जाता? उन्होंने मुझे बंद साबित करते हुए कहा। नेता जब तक कार्यकर्ता रहता है, तब तक उसे डायरी की याद नहीं आती। मगर जैसे-जैसे वह विधायक, सांसद और मंत्री होता जाता है, उसे खुली किताब कंठस्थ होने लगती है।

अपराधियों को बचाने के लिए वकील मोटी-मोटी किताबें पढ़ते हैं, फिर भी अपराधियों के बचने की गारंटी नहीं रहती। मगर यदि नेता पर शराब के ठेकेदार से दस करोड़ रुपये लेने का आरोप है, तो वह खुद को खुली किताब कहकर आरोप की कालिख पोंछ धवल छवि धारण कर लेता है।

जब विपक्ष के नेता पर मुख्यमंत्री के इशारे पर नाचने की खबर आती है, तो वह भी आजमाया हुआ नुसखा लागू कर देता है कि मैं खुली किताब की तरह हूं, और मामला शांत हो जाता है। किताब से क्रांति की बात तो पुरानी हो गई, मगर अब तो किताब से शांति भी होने लगी है। साक्षरता वालों को यह याद रखना चाहिए। उन लोगों को अपनी गलती सुधार लेनी चाहिए, जो कहते रहते हैं कि राजनीति में पढ़े-लिखे लोग नहीं आ रहे। अंगूठा टेक यदि 'खुली किताब' हो रहे हैं, तो यह साक्षरता का ही तो प्रमाण है।

प्रकाश पुरोहित